A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

नाटकों मे शान्त रस और अभिनेयता

शशिबाला

कूटशब्द *शान्तरस अभिनेयता, निर्वेद, स्थायी भाव।*

प्रस्तुत शोधपत्र में नाटकों में शान्तरस और अभिनेयता विषयक चर्चा की गई है। इसमें भरत सहर, भोज, शारदा तव्य आदि प्रमुख आचार्यो मतो का वर्णन करके बताया गया है। कि कुछ आचार्य शान्त रस को स्वीकार नहीं करते तथा कुछ आचार्य शान्तरस को स्वीकार तो करते हैं। परन्तु इसका अभिनय होता है कि नहीं इस विषय कोई प्रामाणित तर्क नहीं देते जिसमें मम्मट, पण्डितराज इत्यादि आचार्यो ने निर्वेद को शान्त का स्थायी मान माना है।

काव्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है–दृश्य एवं श्रव्य।[1] दृश्यकाव्यों में नाटकाइत्यादि को तथा श्रव्यकाव्यों में महाकाव्याइत्यादि को समाहित किया गया है। प्राय: देखा जाता है कि जनमानस में जो प्रभाव रूपकों का होता है वह श्रव्यकाव्य का नही होता है। इसलिए सहृदयों के लिए रूपकों की उपयोगिता सुस्पष्ट है। कहा भी है – 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' काव्यों में नाटक रमणीय होते हैं। आचार्य धनञ्जय का मत है –

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय।।[2]

अर्थात् आनन्द प्रवाहित करने वाले रूपकों में शास्त्रीयता ढूंढना बुद्धि की अल्पता होगी। जो इसे इतिहास की तरह मान कर चलता है उस रस पराङ्.मुख व्यक्ति को नमस्कार!

रस का आश्रय दस प्रकार का होता है (दशधैव रसाश्रयम्)[3] यह उक्ति भी इस बात की पुष्टि करती है कि रसों के बिना रूपकों की परमानन्दरूपता कभी सिद्ध नही होती।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि सभी रूपकों में सभी रसों की अभिनेयता होती है कि नही? अभिनय तो सहृदय की रसानुभूति का साधन होता है इसलिये दर्शकों के लिए नाट्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण ही अभिनय होता है। नाट्यदर्पण के अनुसार दर्शकों की ओर अभिमुखीकरण के द्वारा नाट्यवस्तु को प्राप्त कराया जाता है इसलिए इसे अभिनय कहा जाता है।[4] प्राय: यह देखा जाता है कि

ISSN 976-8645

अन्य रसों की अभिनेयता में आचार्यो में कोई वैमत्य नहीं दिखाई देता, परन्तु शान्त रस की अभिनेयता के विषय में एकमत्य नहीं है। इस विषय में आचार्यों के पाँच मत प्राप्त होते हैं –

1. कुछ आचार्य शान्तरस को स्वीकार नहीं करते तथा रसो की गणना के प्रसङ्ग में इसका उल्लेख भी नहीं करते, जैसे आचार्य भरत[5], दण्डी[6] आदि। भरत के विषय में आगे चर्चा की जायेगी।
2. कुछ आचार्य शान्तरस को तो स्वीकार करते हैं परन्तु इस का अभिनय होता है कि नहीं इस विषय में मौन हैं। अग्निपुराणकार[7] , रुद्रट[8] , भोज[9] , वाग्भट[10], हेमचन्द्र[11] , जयदेव[12] , विश्वनाथ[13] , केशव मिश्र[14] आदि आचार्यो को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।
3. कुछ आचार्य रूपकों में शान्तरस को स्वीकार करते हुए भी इस विषय पर अपने तर्को को प्रस्तुत नहीं करते कि किसलिए या किस कारण से रूपकों में शान्तरस का अभिनय नहीं किया जा सकता। जैसे उद्भट काव्यालंकार सार संग्रह में शान्त रस की गणना तो करते हैं[15] परन्तु उस के अभिनय के पक्ष पर कुछ नहीं कहते।
4. कुछ आचार्य ऐसे हैं जो अपने ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से शान्तरस की अभिनेयता को स्वीकार नहीं करते और अपने पक्ष में तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। इनमें धनञ्जय, शारदातनय, राज चूणामणि दीक्षित, गंगाराम जड़ी आदि प्रमुख है। अभिनवभारती और रसगंगाधर में शान्तरस की अभिनेयता के पक्ष में मौलिकता के उद्घाटन हेतु अनेक मत दिये गये है। इन का सम्मिलित रूप कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत हैं –
   (1) भरतमुनि रसों की गणना के प्रसङ्ग में शान्तरस को स्वीकार नहीं करते। उसके किसी स्थायीभाव निर्वेद या शम का उल्लेख करते हैं।
   (2) राग–द्वेषादि के सर्वथा नष्ट होने पर ही शम की स्थायी भाव के रूप में स्थिति बन सकती है। परन्तु अनादि काल से चले आ रहे राग–द्वेषादि का सर्वथा विनाश नहीं हो सकता, इसीलिए शम शान्तरस का स्थायी भाव नहीं हो सकता[17]।
   (3) यदि शान्तरस का शम स्थायी भाव होता तो शम की अवस्था में चेष्टा का अभाव होता तब उस की अभिनेयता कैसे हो सकती है। चेष्टा के अभाव में विषय वस्तु का प्रयोग कैसे होगा ?[18] आचार्य धनिक की उक्ति है कि शान्त

ISSN 976-8645

रस का अभिनय संभव न होने से नाट्य में उस का प्रवेश नहीं होता। अभिनयात्मक नाटकादि में शम का स्थायित्व इसीलिए निषिद्ध है। शम का अभिप्राय तो सब प्रकार के व्यापार का अभाव होना ही है। धनञ्जय का भी कथन है कि – **''शममपि केचित् प्राहुः, पुष्टिः नाट्येषु नैतस्य''**[19] कि कुछ लोग शम को स्वीकार तो करते हैं पर नाट्य में इसकी पुष्टि नहीं हो पाती।

(4) चित्त की जो चार अवस्थायें होती है। उनसे लौकिक जनों मे शान्त की स्थिति नहीं होती। धनञ्जय का मत है कि काव्यार्थ अर्थात् विभावादियुक्त स्थायी भाव के द्वारा सहृदय के चित्त का एकीभाव या तन्मयता होती है। इसी तन्मयता से आनन्द का जो अनुभव होता है उसी को स्वाद या रस कहते है। यद्यपि यह आस्वाद समान रूप से होता है फिर भी प्रत्येक रस में यह एकीभाव अपने-अपने विभावादि के कारणों से भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए चित्त की चार भूमियाँ होती है – शृङ्गार में चित्त का विकास, वीर रस में विस्तार, वीभत्स में क्षोभ और रौद्ररस में विक्षेप होता है। अन्य हास्य, अद्भुत, भयानक और करुण की भी अपने-अपने विभावादि कारणों से पुष्टि की जाती है। इन में भी विकासादि चार भूमियाँ (अवस्थायें) होती हैं।[20] भरत मुनि ने भी कहा है।

शृङ्गारद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिवीभत्साच्च भयानकः।। [21]

अर्थात् शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार इनके मत से भी नाट्य में आठ ही रस सिद्ध होते हैं।

(5) वृत्तियों की समान अवस्था होने से शान्तरस के अनुभाव नहीं होते। आचार्य शारदातनय का मत है कि शान्तरस में मान-अपमान शोक-हर्ष के समवृत्ति होने से प्राय अनुभाव नहीं होते।[22]

(6) शारदातनय का कथन है कि व्यभिचारी या संचारी भाव शान्तरस को उपकृत नही कर पाते।

नोपकुर्वन्ति शान्तस्य भावाः सञ्चारिणो यतः
तस्माच्छान्तरसस्यैवं विकलाङ्गत्वमुच्यते''[23]

क्योकि संचारीभाव शान्त रस का उपकार नहीं करते अतः इसे विकलाङ्ग कहा गया है।

ISSN 976-8645

(7) मम्मट, पण्डितराज आदि आचार्य निर्वेद को शान्त का स्थायीभाव मानते हैं।[24] स्थायीभाव विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों से विच्छिन्न नहीं होता, परन्तु निर्वेद में यह स्थिति नहीं देखी जाती। इसलिए निर्वेदादि स्थायी भाव नहीं है अपितु ये संचारी भाव ही माने जाने चाहिए।[25]

(8) शान्त रस की सिद्धि शम के संभव होने से ही होती है। परन्तु नट तो सांसारिक व्यक्ति है। अत: नट मे शम की संभावना नहीं है। रसगंगाधर में शान्तरस के अभिनय-विरोधी मतों के प्रकरण में पण्डितराज कहते हैं-

शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे च तद्सम्भवात्।

अष्टावेव रसा नाट्ये न शान्तस्तत्र युज्यते।।[26]

अर्थात् शान्तरस के शम द्वारा सिद्धि होने से और नट में उस शम के असंभव होने से नाट्य में रस आठ ही है, नाट्य में शान्त रस मानना उचित नही है।

(9) रूपकों में शान्तरस के विरोधी गीतवाद्यादि की भी उपस्थिति रहती है परन्तु शान्तरस का स्वभाव विषय विमुखता का है इसलिए गीत-वाद्यादि के रहते विषयविमुख सहृदयों के हृदय में शान्तरस का उद्रेक कैसे होगा ?[27]

इस प्रकार शान्तरस के विरोधी आचार्यो की विप्रतिपत्तियां हमारे सामने दिखाई देती हैं।

5. दूसरे कुछ आचार्य-विष्णुधर्मोत्तरपुराण, उद्भट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, रामचन्द्र, गुणचन्द्र, जगन्नाथ, विश्वेश्वर पाण्डेय, छज्जूराम शास्त्री प्रभृति रूपकों में शान्तरस की अभिनेयता मानते है। इन आचार्यो ने अपने-अपने ग्रन्थो में शान्त की अभिनेयता को विविध तर्को से सिद्ध किया है। अब इन आचार्यो द्वारा अभिनेयता विरोधी पक्षों का किस प्रकार निराकरण किया गया है, उस की भी थोड़ी चर्चा की जा रही है। -

(1) प्रतिवादियों की प्रथम विप्रतिपत्ति यह है कि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में रसगणना के प्रसङ्ग में रसों के स्थायी भावों में विभावादि के प्रतिपादन में शान्त रस की पुष्टि नहीं होती।

इस विषय में प्रथमतया यह बात कही जा सकती है कि वर्तमान समय में काव्यशास्त्र या नाट्यशास्त्र में जो सिद्धान्त प्रचलित हैं, उनकी भरत के नाट्य शास्त्र से पुष्टि हो, यह आवश्यक नही है क्योकि इस नाट्यकला शास्त्र की विकासधारा प्रवाहमयी होती है। समय-समय पर नये नये सिद्धान्तो का सृजन होता रहता है। जैसे नाट्यशास्त्र मे चार ही अलंकार माने गये थे।[28] परन्तु

ISSN 976-8645

अप्पयदीक्षित के कुवलयानन्द में इनकी संख्या 123 मानी गई है। इस विषय मे दूसरा हेतु अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती मे प्रस्तुत किया है। यहाँ श्लोक निम्न प्रकार से प्राप्त होते हैं जिसमें पाठ भेद दिखता है –

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टो नाट्ये रसाः स्मृताः।।

इसमें आठ रस माने गये है, परन्तु इस का पाठान्तर अधिक स्वीकार किया जाता है जिस में नौ रस माने गये है–

श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्यरसाः स्मृता।।

इसी प्रकार इन के नौ स्थायी भाव भी बताये गयें हैं –

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।

जुगुप्साविस्मयशमाः स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।।[29]

इस प्रकार स्थायी भाव तो नौ सिद्ध होते ही हैं। आचार्य अभिनव गुप्त ने शान्त के विभावादियों का भी प्रतिपादन किया है। वे भरत के ही वचन को प्रस्तुत करतें हैं–

''अथो शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्तकः। स तु

तत्त्वज्ञानवैराग्याशयशुद्ध्यादिभिः विभावैः समुत्पद्यते। तस्ययमनियमाध्यात्म ध्यानधारणोपासन–सर्वभूतदयालिङ्गग्रहणादिभिरनुभावैरभिनयः कर्तव्यः। व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेद स्मृतिधृतिशौच – स्तम्भरोमाञ्चादयः इति।[30]

भरतमुनि ने शान्तरस का प्रतिपादन किया है। इस विषय में रसगंगाधर मे भी प्रमाण प्राप्त होता है –

शृङ्गार करुणो शान्तो रौद्रो वीरोऽद्भुतस्तथा।

हास्यो भयानकश्चैव वीभत्सश्चेति ते नव।।

इन नौ रसों को मानने के प्रमाण स्वरूप वे भरत को ही उद्धृत करते हैं –**''मुनिवचनं चात्र प्रमाणम्''।**[31]

(2) राग–द्वेष आदि का सर्वथा विनाश संभव नहीं है। इसलिए भी शम शान्त रस का स्थायी भाव नहीं हो पाता। इसके समाधान मे कहा जा सकता है कि रसानुभूति की दशा में सहृदय के मन की स्थिति आस्वाद्यमान विषय से भिन्न किसी अन्य

ISSN 976-8645

विषय से शून्य होती है। इस विषय में विश्वनाथ का मत निम्न प्रकार से द्रष्टव्य है–

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।[32]

अर्थात् यह रस सत्त्वगुण के उद्रेक से अखण्ड – स्वरूप वाला, स्वप्रकाशरूप, आनन्द और चिद्रुप होता है। यह किसी भी अन्य विषय के स्पर्श से शून्य होता है। यह ब्रह्मानुभूति के सहोदर के समान है। यह अलौकिक और चमत्कारात्मक होता है। उच्च कोटि के सहृदयों द्वारा यह अपने से अभिन्न रूप में आस्वादित होता है। भाव यह है कि योगियों की तरह यह प्राक्तन पुण्य के प्रभावस्वरूप आत्मसाक्षात्कार के समान अनुभूत होता है।

(3) यह कहा गया था कि चेष्टाओं के अभाव स्वरूप शम का या शान्तरस का प्रयोग संभव नही। इसका समाधान अभिनवभारती में प्राप्त होता है। आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि रति– शोकादि की चरम दशा में अप्रयोग योग्य होने पर भी उस का भी तो अभिनय होता ही है।[33] वस्तुतः रतिभाव की चरमदशा की स्थिति तो सुरतक्रीडा तथा रौद्र की पर्यन्तदशा या चरमदशा वध ही होता है जो रंगमंच नहीं हो सकता। रंगमंच पर इसका प्रदर्शन भी निषिद्ध किया गया है फिर भी जिस प्रकार इनको अभिनीत किया जाता है वैसे शम का भी अभिनय किया जा सकता है।

(4) चित्त की जो चार अवस्थाएँ होती है उनमें शान्तरस की उद्रेक अवस्था में चित्त की क्या अवस्था होती है। इस प्रश्न के उत्तर में अभिनवगुप्त कहते है कि अवस्था में चित्त की स्थिति समत्व वाली होती है। वे भरत के मत को प्रस्तुत करते हैं।

यत्र न दुःखं न सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्त प्रथितो रसः।।
भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते।।
स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते।

ISSN 976-8645

पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते।।

एवं नवरसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः।[34]

अर्थात् जहाँ सुख दुःख, ईर्ष्या द्वेष नहीं होता, सब प्राणियों के प्रति सम अवस्था होती है। वही शान्त रस है। रति आदि तो भाव विकार है। शान्त तो स्वाभाविक अर्थात् समस्थिति है। यह स्वभाव से ही उत्पन्न होकर वहीं लीन हो जाती है। अपने-अपने निमित्तों को प्राप्त होकर शान्त की स्थिति से जो भाव उत्पन्न होता है, निमित्त के हट जाने पर शान्त मे ही विलीन हो जाता है। इसलिए नाट्यमर्मज्ञ (शान्त सहित) नौ ही रस मानते है।

(5) समवृत्ति वाला होने से शान्त के अनुभाव नही होते, यह आपत्ति भी की गई थी। परन्तु अनुभाव नट के नहीं होते अनुकार्य (जिसका अनुकरण किया जा रहा होता है) के होते है। इसलिए शान्त रस प्रधान नाटकों के अभिनय में रंगमञ्च पर नटो द्वारा भिक्षाटन सभी प्राणियों के प्रति दया भाव या वैराग्य भाव आदि का अभिनय किया ही जाता है। इसलिए शान्त के भी अनुभाव होते ही हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी कहा गया है **''शान्तस्य तु समुत्पत्ति र्न च वैराग्यतः स्मृता''** अर्थात नट के वैरागी होने से ही शान्त रस की उत्पत्ति होती हैं, ऐसी बात नहीं है। **''स च अभिनेयो भवतिलिंगग्रहणतस्तथा''।**[35] अर्थात् वैरागियो के चिन्हों को धारण करके इस रस का भी अभिनय किया जाता है। भाव यह है कि नट अनुकार्य के भावों का ही अभिनय करता है, अपने भावों का नहीं।

(6) शान्त रस में संचारी भाव शान्त को उपकृत नहीं करते, यह आपत्ति की गयी थी। इस विषय में विश्वनाथ का मत उल्लेखनीय है।-

युक्तवियुक्तदशामवस्थितो यः शमः स एव यतः।

रसतामेति तदस्मिन् संचार्यादेः स्थितिश्च न विरुद्धा।।[36]

योग और वियोग दशा में शम नामक जो स्थायी भाव होता है वह भी सहृदयों द्वारा आस्वाद्य होता ही है इसलिये यहाँ भी संचारी भावों के होने मे कोई विरोध नहीं है। अर्थात् उक्त दोनों दशाओं में स्थित शम ही शान्त रस में परिणत हो जाता है। वैषयिक सुख में डूबे हुए होने पर भी इस रसानुभूति की विशिष्ट दशा मे निर्वेद आदि संचारी भाव उत्पन्न हो सकते है। कहा भी गया है कि

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।

तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।[37]

ISSN 976-8645

भाव यह है कि लोक में जो सम्भोग सुख या जो कोई अलौकिक दिव्य सुख अनुभव किया जाता है वह तृष्णाओं के विनाश से उत्पन्न सुख के सोलहवें भाग को भी प्राप्त नही कर पाता अर्थात् शान्त रसानुभूति की स्थिति तो अन्य रसो की अनुभूति से भी अद्भुत् है।

(7) निर्वेद नामक भाव विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से बिखर जाता है अत: वह शान्त का स्थायी भाव नहीं बन पाता, क्योंकि स्थायी भाव तो वह है जो सभी अवस्थाओं में एक रूप रहे। इस आपत्ति के प्रसङ्ग में कह सकते है कि शान्त का स्थायी भाव निर्वेद, दरिद्रता, धिक्कार, व्याधि, अपमान, आक्रोश, क्रोध या इष्टजनों के वियोग से उत्पन्न नहीं होता बल्कि तत्त्व ज्ञान से होता है। रस चन्द्रिका में विश्वेश्वर पाण्डेय कहते है कि-''**स्थायी स्याद् विश्वेश्वर तत्वज्ञानाद् भवेद् यदि**''।[38]

अर्थात् सांसारिक विषय वासनाओं के प्रति तत्त्वज्ञान उत्पन्न होने पर ही भाव स्थायी होता है। पण्डितराज जगन्नाथ ने भी रस गंगाधर में कहा है कि नित्य अनित्य वस्तुओं के विषय में विचार से उत्पन्न होने वाला विषयों के प्रति विराग भाव वाला निर्वेद होता है। यदि यह निर्वेद क्षणिक है तो स्थायी नही बन पाता तब तो यह संचारी ही होगा। गृहकलहजन्य निर्वेद तो व्यभिचारी ही होता है।[39]

(8) यह बात कही गयी थी कि नट में शम की सम्भावना नहीं होती क्योंकि वह सांसारिक पुरुष है इस विषय में पण्डित राज जगन्नाथ का कथन है कि नट में शम का अभाव होने से यह रस अभिनेय नही है, यह कहना असंगत है क्योकि रस की अभिव्यक्ति नट में स्वीकार नहीं की गयी है। नट में वास्तविक क्रोधादि का भी अभाव होने से मंच किये जाने वाले उसके वध आदि कार्य भी वास्तविक नहीं होते। उसके शिक्षा अभ्यास आदि से किये जाने वाले कृत्रिम कार्यों से यदि तत्-तत् प्रकारक रस की अनुभूति होती है, तो शान्त में भी वही स्थिति है। यहाँ भी शान्त रस की उत्पत्ति या अभिनेयता में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। भाव यह है कि नट जिन भावों का अभिनय कर रहा होता है, यह आवश्यक नहीं की वह अपने जीवन में भी वैसा ही हो।

(9) रूपकों में शान्त रस के विरोधी गीत-वाद्यादि के रहते कैसे शान्त रस का उद्रेक होगा, यह आपत्ति की गयी थी। इस विषय में पण्डित राज जगन्नाथ दो हेतु

ISSN 976-8645

उपस्थित करते हैं। हम देखते हैं कि शान्तरस युक्त रूपकों को देखने से सहृदयों में शान्त रस उद्रेक होता है क्योंकि कार्य के अनुसार ही कारणों की कल्पना की जाती है दूसरी बात यह है कि विषयों के चिन्तन मात्र से शान्त रस के विरोधी तत्त्व उत्पन्न हो जाते है तो इस रस के आलम्बन स्वरूप संसार की अनित्यता इसके उद्दीपन के कारणभूत पुराणों का श्रवण सत्संग पुण्यवन-तपोवन तीर्थ आदि का दर्शन भी तो विषय है फिर इनके दर्शन शान्त के उद्दीपन की कल्पना क्यों की जाती है? इसलिये गीत वाद्यादियों में यदि शान्तरस के अनुकूल वर्णन होता है तो वह शान्त रस का अभिव्यञ्जक ही होगा, अवरोधक नहीं।[40]

वी. राघवन् ने "The Number of Rasas" नामक ग्रन्थ में[41] शान्त रस प्रधान नाटकों का उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि शान्तरस की अभिनेयता न केवल लक्षण ग्रन्थों मे वर्णित है बल्कि प्रायोगिक रूप से भी इसका निदर्शन कर सकते हैं। आचार्य आनन्दवर्धन भी नागानन्द नाटक को शान्त रस प्रधान मानते हैं।[42] कवि हरिहर ने भी **भर्तृहरि निर्वेद** नामक नाटक की प्रस्तावना में कहा है कि यह शान्त रस प्रधान नाटक है और शान्त रस परम विश्रान्त रूप है।

शृङ्गारादिरनेकजन्ममरणश्रेणीसमासादितैः
एणीदृक्प्रमुखैः स्वदीपकसखैरालम्बनैरार्जितैः।
अस्त्येव क्षणिको रसः प्रतिपलं पर्यन्तवैरस्यभूः
ब्रह्माद्वैतसुखात्मकः परमविश्रान्तो हि शान्तो रसः।।

अर्थात् अनेक जन्मों मरणों की शृंङ्खला से अपने लिये दीपक स्वरूप मृगनयना रूप आलम्बनों से उत्पन्न होने वाले शृङ्गारादि रस तो क्षणिक ही होते हैं। परन्तु निरन्तर चरम वैराग्य से उत्पन्न होने वाला अद्वैत ब्रह्मानुभूति से उत्पन्न होनें वाले सुख के समान परम विश्रान्त रूप शान्त रस तो इन सबसे निराला ही होता है।

अन्तटिप्पणी

1. साहित्य दर्पण 6.1
2. दशरूपक 1.6
3. वही 1.7

ISSN 976-8645

4. नाट्य दर्पण का. 152, सू0 226 वृत्तिभाग
5. नाट्य शास्त्र 6.15
6. इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम् – काव्यादर्श: 2.292
7. अग्निपुराण 339.8–9
8. काव्यालंकार 12.3
9. सरस्वती कण्ठाभरण 5.164
10. वाग्भटालंकार 5.3
11. काव्यानुशासन–द्वि0 अध्याय
12. चन्द्रालोक 6.13
13. साहित्य दर्पण 3.182
14. अलंकार शेखर 8.1.1
15. काव्यालंकार संग्रह 4.4
16. नाट्यशास्त्र 6.15.17
17. दशरूपक 4.35 वृत्तिभाग
18. अभिनव भारती, रस प्रकरण
19. दशरूपक 4.35
20. वही
21. नाट्यशास्त्र 6.39
22. भाव प्रकाशन 6.35
23. वही
24. काव्यप्रकाश 4.35
25. रसगंगाधर प्रथम आनन
26. वही
27. वही
28. नाट्यशास्त्र 17.43
29. वही 6.15–16

ISSN 976-8645

30 अभिनव भारती – रस प्रकरण

31. रस गंगाधर प्रथम आनन

32. साहित्य दर्पण 3.2

35. वही

34. वही

35. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3.30.9

36. साहित्य दर्पण 6.225

37. वही वृत्ति भाग

38. रस चन्द्रिका – रस प्रकरण

39. रस गंगाधर प्रथम आनन

40. वही

41. The Number of Rasas 41–46

42. वही

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, सम्पा. एवं व्याख्या शालिग्रामशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
2. कात्यप्रकाश, मम्मट, सम्पा. एवं व्या. विश्वेश्वर ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1950
3. दशरुपक, धन्ञ्ज, सम्पा. एवं व्याख्या श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार मेरठ, 1999
4. रसगंगाधर, पंडितराज जगन्नाथ, हिन्दी व्याख्या पण्डित मदनमोहन मा. प्रथम आगन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1970
5. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, सम्पा. अनु. रेखाप्रसाद द्विवेदी, भारतीय उच्चअध्ययन संस्थान शिमला 2005